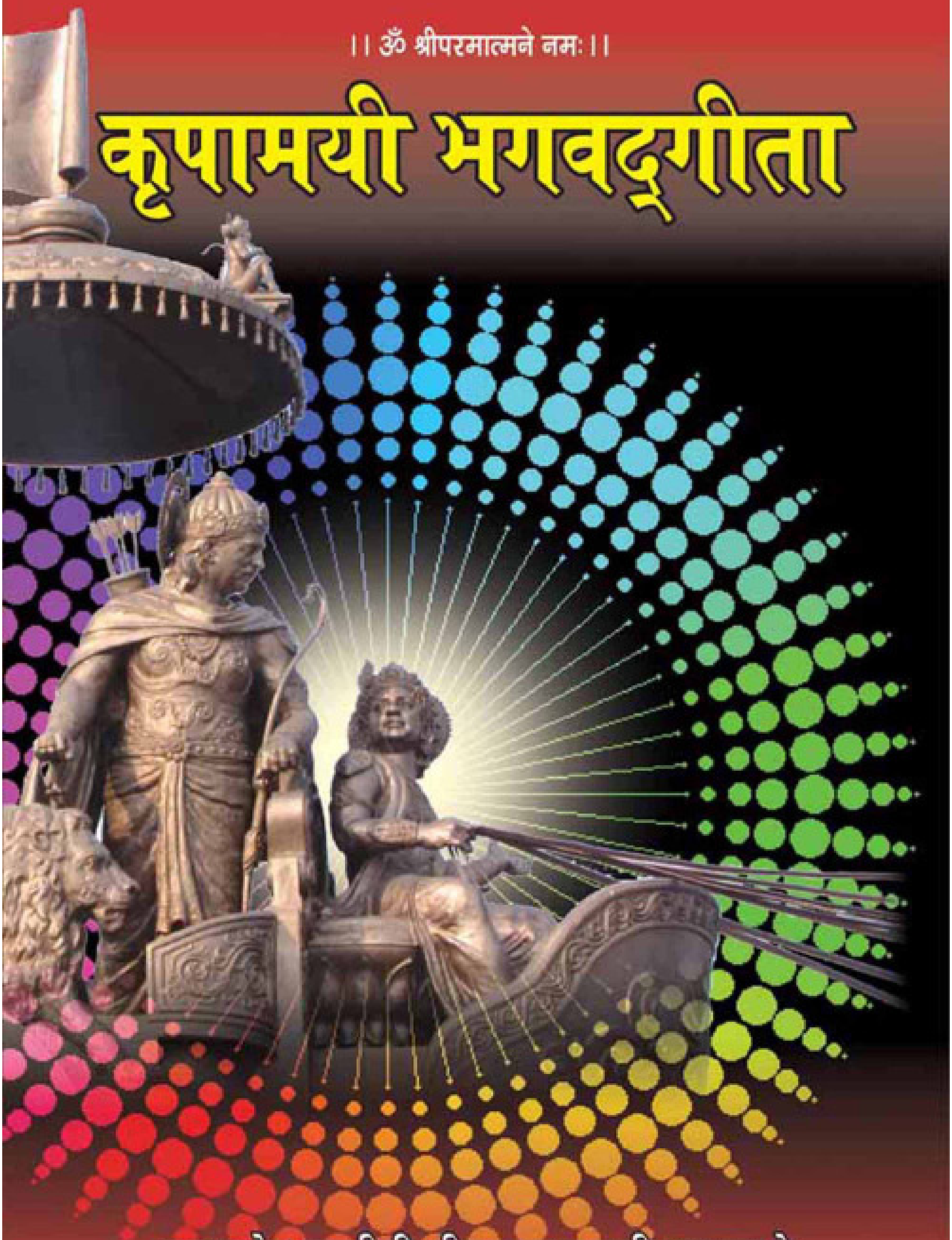
।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

# कृपामयी भगवद्गीता



परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके
वचनोंसे संगृहीत

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# कृपामयी भगवद्गीता

**[ परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके वचनोंसे संगृहीत ]**

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥


संकलन–सम्पादन—

**राजेन्द्र कुमार धवन**

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# विषय-सूची

*विषय* *पृष्ठ-संख्या*





॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# कृपामयी भगवद्गीता

## एक निवेदन

अनेक सन्त-महात्माओंकी बातें सुननेसे और अनेक पुस्तकें पढ़नेसे मेरेपर यह असर पड़ा कि भगवद्गीता बड़ा अनुपम, अलौकिक ग्रन्थ है। इसमें साधकके लिये पूरी सामग्री मिलती है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, समुदाय आदिका क्यों न हो! कारण यह है कि इसमें किसी मत-विशेषकी प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं है। इसमें तो वास्तविक तत्त्वकी प्रशंसा है। वास्तविकता यही है कि जो नित्य-निरन्तर रहनेवाला अपरिवर्तनशील तत्त्व है, उसका अनुभव परिवर्तनशील संसारके रागसे रहित होनेपर स्वतः होता है। इसका विशेष अधिकारी वही है, जिसको परिवर्तनशीलमें चैन नहीं पड़ता, जो विनाशी सुखमें नहीं फँसता।

गीता-ग्रन्थ छोटा है। इसकी संस्कृत-भाषा सरल है। भाव बड़े गम्भीर हैं। साधनोंका वर्णन करनेमें, विस्तारपूर्वक समझानेमें, एक-एक साधनको कई बार कहनेमें संकोच नहीं किया; परन्तु ग्रन्थका कलेवर नहीं बढ़ा! ऐसा संक्षेपमें विस्तारपूर्वक कहनेवाला दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता!

मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें परमात्मतत्त्वका अनुभव कर सकता है, जिसको प्राप्त करना मनुष्यमात्रका जन्मसिद्ध अधिकार है। युद्ध-जैसी महान् घोर परिस्थितिमें भी वह अपना कल्याण कर सकता है! इस प्रकार गीतामें मनुष्यको व्यवहारमात्रमें परमार्थकी कला सिखायी गयी है। अतः मनुष्यमात्रको कल्याणका मार्ग दिखानेवाला इसके जोड़का दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता।

मन लगाकर गीताका पाठ करनेमात्रसे शान्ति मिलती है। ध्यानपूर्वक गीताका पाठ करनेमात्रसे बहुत तरहके भाव स्फुरित होते हैं और वे भाव बड़े ही शान्तिदायक होते हैं। मनमें कोई शंका होती है तो पाठ करते-करते उसका समाधान हो जाता है। गीताके भावोंपर विचार करनेमात्रसे लाभ होता है, इसमें मुझे किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनको गीताके भावोंको हृदयंगम करना चाहिये और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

**—परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज,**
**सितम्बर १९८२, वृन्दावन**



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# गीताका संक्षिप्त परिचय

(१)

गीता-ग्रन्थकी रचना विक्रम-संवत्से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी मानी जाती है। यह मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीके दिन कही गयी, इसलिये इसी दिन 'गीता जयन्ती' का उत्सव मनाया जाता है।

(२)

गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण हैं, श्रोता उनके प्रिय सखा अर्जुन हैं, संकलनकर्ता महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी हैं और लेखक बुद्धिप्रदायक श्रीगणेशजी हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने उपदेशमें प्रमाणरूपसे बहुत-सी श्रुतियाँ कही थीं, उनको तथा जो उन्होंने गद्यमें कहा था, उसे भी वेदव्यासजीने स्वयं श्लोकबद्ध कर लिया तथा अर्जुन, संजय और धृतराष्ट्रके वचनोंको भी अपनी भाषामें श्लोकबद्ध कर लिया। वही श्रीकृष्णार्जुनसंवादके रूपमें अठारह अध्यायोंमें विभक्त सात सौ श्लोकोंका यह ग्रन्थरत्न—श्रीमद्भगवद्गीता है।

(३)

गीता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य वाणी है। जैसे प्रमुख स्मृतियाँ अठारह ही हैं, पुराण भी अठारह ही हैं, भागवतके श्लोक भी अठारह हजार ही हैं, महाभारतके पर्व भी अठारह ही हैं, कौरव-पाण्डवोंकी सेना भी अठारह अक्षौहिणी ही थी, युद्ध भी अठारह दिन ही हुआ, वैसे ही गीतामें भी अठारह ही अध्याय हैं।

(४)

यदि कहें कि गीतामें भगवान्का उपदेश तो दूसरे अध्यायसे प्रारम्भ हुआ है, फिर प्रथम अध्यायको गीतामें क्यों सम्मिलित किया गया? इसका उत्तर यह है कि प्रथम अध्यायमें भी भगवान्के वचन हैं—'**उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति**' (गीता १। २५) 'हे पार्थ! इन इकट्ठे हुए कुरुवंशियोंको देख'। अगर ये वचन नहीं होते तो गीताका उपदेश ही नहीं होता।

गीतोपदेशके होनेमें भगवान्की अपार, असीम कृपा सन्निहित है। अर्जुनने तो रथ खड़ा करनेको कहा था। अगर भगवान् बीचमें कहीं भी रथको खड़ा कर देते तो गीता प्रारम्भ ही नहीं होती। परन्तु भगवान्ने रथको खड़ा भी किया पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्यके सम्मुख तथा अर्जुनसे कहा कि 'इन कुरुवंशियोंको देख'। अगर भगवान् 'कुरुवंशियोंको देख'—ऐसा न कहकर 'धृतराष्ट्रके पुत्रोंको देख'—ऐसा कहते तो अर्जुनको शोक नहीं होता, और शोक न होनेसे गीताका उपदेश प्रारम्भ नहीं होता; क्योंकि युद्धके इच्छुक धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे युद्ध करनेको वह तैयार था ही।

दूसरी बात, प्रथम अध्यायमें इकतीसवेंसे चौवालीसवें श्लोकतक अर्जुनका जो कथन है, उसका भगवान्ने अगले अध्यायोंमें समाधान किया है। इससे भी सिद्ध होता है कि प्रथम अध्यायका गीतासे

घनिष्ठ सम्बन्ध है।

तीसरी बात, महाभारतके भीष्मपर्वमें पचीसवें अध्यायसे ही गीता प्रारम्भ होती है, जो कि भगवद्गीताका प्रथम अध्याय है।

(५)

गीता कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्धके आरम्भमें कही गयी। यहाँ शंका हो सकती है कि जब युद्धकी तैसारी थी, ऐसे अल्प समयमें गीताका सुनाया जाना सम्भव नहीं था; अतः भगवान्‌ने थोड़ी-सी बातें कही होंगी, जिनका विस्तार वेदव्यासजीने कर दिया होगा। इसका समाधान यह है कि तबतक युद्धका आरम्भ ही नहीं हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा गीता सुनानेके बाद ही युद्धका आरम्भ हुआ है।

महाभारतमें भीष्मपर्वके पचीसवेंसे बयालीसवें अध्यायतक गीता है। इसके बाद तैंतालीसवें अध्यायमें युधिष्ठिर पितामह भीष्म आदिके पास गये और उनको नमस्कार करके उनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलनेपर युधिष्ठिरने यह घोषणा की कि कोई वीर हमारे पक्षमें आना चाहे तो आ सकता है। यह सुनकर युयुत्सु डंका पीटते हुए पाण्डवोंके पक्षमें आया (महाभारत, भीष्म० ४३। ९४-१००)। इसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ। इसलिये वहाँ गीता सुनानेके लिये समय अल्प नहीं था, प्रत्युत पर्याप्त था।

(६)

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान्‌ने अर्जुनसे युद्ध करानेके लिये ही गीता सुनायी थी। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। भगवान्‌ने अर्जुनसे युद्ध नहीं कराया है, प्रत्युत उनको अपने कर्तव्यका ज्ञान कराया है। युद्ध तो अर्जुनको कर्तव्यरूपसे स्वतः प्राप्त हुआ था। अतः युद्धका विचार तो अर्जुनका खुदका ही था (गीता १। २०-२२)। वे स्वयं ही युद्धमें प्रवृत्त हुए थे, तभी वे भगवान्‌को निमन्त्रण देकर लाये थे। परन्तु शोक-मोहसे अभिभूत होनेके कारण वे युद्धसे विमुख हो रहे थे अर्थात् अपने कर्तव्य (क्षात्रधर्म)-के पालनसे पीछे हट रहे थे।

स्वजनोंको देखनेसे मोहवश अर्जुनके मनमें यह बात आयी थी कि मैं युद्ध नहीं करूँगा—'**न योत्स्ये**' (गीता २। ९), पर भगवान्‌का उपदेश सुननेपर अर्जुनने ऐसा नहीं कहा कि मैं युद्ध करूँगा, प्रत्युत ऐसा कहा कि मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा—'**करिष्ये वचनं तव**' (गीता १८। ७३) अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन करूँगा। अर्जुनके इन वचनोंसे यही सिद्ध होता है कि भगवान्‌ने अर्जुनको अपने वर्तमान कर्तव्यका ज्ञान कराया है।

वास्तवमें युद्ध होना अवश्यम्भावी था; क्योंकि इसको कोई भी टाल नहीं सकता था। स्वयं भगवान्‌ने भी विश्वरूप-दर्शनके समय अर्जुनसे कहा है कि 'मैं सम्पूर्ण लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ काल हूँ और इस समय मैं इन सब लोगोंका संहार करनेके लिये यहाँ आया हूँ। अतः तुम्हारे प्रतिपक्षमें जो योद्धालोग खड़े हैं, वे सब तुम्हारे युद्ध किये बिना भी नहीं रहेंगे।' (गीता ११। ३२)। इसलिये यह नरसंहार अवश्यम्भावी होनहार ही था। यह नरसंहार अर्जुन युद्ध न करते, तब भी होता। अगर अर्जुन युद्ध नहीं करते तो जिन्होंने माँकी आज्ञासे द्रौपदीके साथ अपनेसहित पाँचों भाइयोंका

विवाह करना स्वीकार कर लिया था, वे युधिष्ठिर तो माँकी आज्ञासे अवश्य ही युद्ध करते। माँ कुन्तीकी आज्ञा थी—

**एतद् धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः॥**
**यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।**

(महाभारत, उद्योग० १३७। ९-१०)

'तुम अर्जुनसे तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसे यही कहना कि जिस कार्यके लिये क्षत्रिय माता पुत्र उत्पन्न करती है, अब उसका समय आ गया है।'

भीमसेन भी युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते; क्योंकि उन्होंने कौरवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा कर रखी थी (महाभारत, सभा० ७७। २२)। द्रौपदीने तो यहाँतक कह दिया था कि अगर मेरे पति (पाण्डव) कौरवोंसे युद्ध नहीं करेंगे तो मेरे वृद्ध पिता (द्रुपद), भाई (धृष्टद्युम्न) और मेरे पाँचों पुत्र तथा अभिमन्यु कौरवोंसे युद्ध करेंगे (महाभारत, उद्योग० ८२। ३७-३८)।

अर्जुन युद्धभीरु नहीं था, प्रत्युत धर्मभीरु था। वह मरनेसे नहीं, प्रत्युत मारनेसे डरता था। वह इस बातसे भयभीत था कि मेरे द्वारा कहीं अधर्म न हो जाय, जिससे मेरे कल्याणमें बाधा लग जाय। इसलिये भगवान्‌ने युद्ध करानेके लिये ही अर्जुनको गीता सुनायी—ऐसा मानना उचित नहीं है।

(७)

कुछ लोगोंकी धारणा है कि गीता केवल संन्यासियोंके लिये ही है और गीता पढ़नेवाला संन्यासी हो जाता है; अत: वे बालकोंको गीता पढ़ानेसे डरते भी हैं। परन्तु यह बात नहीं है; क्योंकि गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण और श्रोता अर्जुन—दोनों ही गृहस्थ थे और गृहस्थमें ही रहे। जब गीता सुननेके बाद भी अर्जुनने घोररूप दीखनेवाला युद्ध-जैसा कर्म ही किया, तो फिर उसका आशय संन्यास (सर्वथा कर्मत्याग)-में कैसे हो सकता है? गीता तो किंकर्तव्यविमूढ़ मनुष्यकी विमूढ़ता मिटाकर उसके लिये कर्तव्यरूप उचित पथका प्रदर्शन करनेवाली है।

(८)

श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा बहुत विचित्र है, बड़ी ही विलक्षण है! उसके विषयमें मैं क्या कहूँ, मेरी वाणी इस विषयके वर्णनमें असमर्थ है। हमारे पास कोई ऐसे शब्द नहीं हैं, जिनसे हम गीताकी महिमा गा सकें। गीतामें इतने भाव भरे हुए हैं कि जिनका कोई पारावार नहीं है। एक मनुष्य जो कि माप और तौलमें आता है, उसके भी इतने गहरे भाव होते हैं कि उनका कोई जल्दी अन्त नहीं पा सकता, फिर भगवान्‌की तो बात ही क्या है—***'हरि अनंत हरि कथा अनंता'*** (मानस, बाल० १४०। ३)! भगवान् अनन्त, भगवान्‌के नाम अनन्त, भगवान्‌का तत्त्व अनन्त, भगवान्‌के रहस्य अनन्त, फिर भगवान्‌के भावोंका अन्त कैसे आ सकता है?

यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो गीताजीका जरूर अभ्यास करें। मामूली-से-मामूली आदमी हो, चाहे बड़ा-से-बड़ा पण्डित हो—हरेकको गीतामें नयी-नयी चीजें मिलेंगी। साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी भगवान्‌के आश्रित होकर गीता पढ़ेगा, इसमें गहरा गोता लगायेगा तो उसको बहुत-सी

नयी-नयी बातें मिलेंगी। ये बातें केवल पुस्तकोंकी नहीं हैं; मेरी देखी हुई और अनुभव की हुई हैं।

गीताके '**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९) 'सब कुछ वासुदेव ही है' के समान मुझे कोई दूसरी बात मिली ही नहीं! इसमें पातंजलयोगदर्शन आदि सभी दर्शनोंका अन्त हो गया! जब दूसरी सत्ता ही नहीं है तो फिर मनका निरोध कैसे?

(९)

गीता अलौकिक ग्रन्थ है। इसका आप पठन-पाठन करो, मनन करो, इसके गहरे भावोंको समझो। इसमें बहुत ही सुगम बातें सरलतासे समझायी गयी हैं। केवल आप सरल हृदयसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये लग जायँ, तो जो काम कर रहे हैं, उसीसे आपको परमात्माका प्रेम प्राप्त हो जाय। ऐसी विलक्षण बातें गीतामें लिखी हैं! अब क्या बतायें! गीताकी बातें कहते-कहते मेरेको तृप्ति नहीं होती। उनके अर्थ करें, तो तृप्ति नहीं होती और मुझे तो इतना आता भी नहीं! मेरा तो मामूली अभ्यास है, फिर भी नये-नये अर्थ मिलते हैं, नयी-नयी विचित्र बातें दीखती हैं! ऐसी भगवद्गीता है! उसका आप सब अध्ययन करें।

# गीताकी महिमा

श्रीमद्भगवद्गीता एक बहुत ही अलौकिक, विचित्र ग्रन्थ है। इसकी महिमा अगाध और असीम है। इसमें साधकके लिये उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है, चाहे वह किसी भी देशका, किसी भी वेशका, किसी भी समुदायका, किसी भी सम्प्रदायका, किसी भी वर्णका, किसी भी आश्रमका कोई व्यक्ति क्यों न हो। इसका कारण यह है कि इसमें किसी समुदाय-विशेषकी निन्दा या प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्वका ही वर्णन है। वास्तविक तत्त्व (परमात्मा) वह है, जो परिवर्तनशील प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थोंसे सर्वथा अतीत और सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिमें नित्य-निरन्तर एकरस-एकरूप रहनेवाला है। जो मनुष्य जहाँ है और जैसा है, वास्तविक तत्त्व वहाँ वैसा ही पूर्णरूपसे विद्यमान है। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृतिजन्य वस्तु, व्यक्तियोंमें राग-द्वेषके कारण उसका अनुभव नहीं होता। सर्वथा राग-द्वेषरहित होनेपर उसका स्वतः अनुभव हो जाता है।

यह भगवद्गीता-ग्रन्थ प्रस्थानत्रयमें माना जाता है। पगडण्डीको 'पद्धति' कहते हैं और राजमार्ग, घण्टापथ अथवा चौड़ी सड़कको 'प्रस्थान' कहते हैं। मनुष्यमात्रके उद्धारके लिये तीन राजमार्ग 'प्रस्थानत्रय' नामसे कहे जाते हैं—एक वैदिक प्रस्थान है, जिसको 'उपनिषद्' कहते हैं; एक दार्शनिक प्रस्थान है, जिसको 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं और एक स्मार्त प्रस्थान है, जिसको 'भगवद्गीता' कहते हैं। **प्रस्थानत्रयमें गीता बहुत विलक्षण है; क्योंकि इसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र दोनोंका ही तात्पर्य आ जाता है।** उपनिषदोंमें मन्त्र हैं, ब्रह्मसूत्रमें सूत्र हैं और भगवद्गीतामें श्लोक हैं। भगवद्गीतामें श्लोक होते हुए भी भगवान्‌की वाणी होनेसे ये मन्त्र ही हैं। इन श्लोकोंमें बहुत गहरा अर्थ भरा हुआ होनेसे इनको

सूत्र भी कह सकते हैं। 'उपनिषद्' अधिकारी मनुष्योंके कामकी चीज है और 'ब्रह्मसूत्र' विद्वानोंके कामकी चीज है; परन्तु 'भगवद्गीता' सभीके कामकी चीज है।

गीता उपनिषदोंका सार है, पर वास्तवमें गीताकी बात उपनिषदोंसे भी विशेष है। कारणकी अपेक्षा कार्यमें विशेष गुण होता है; जैसे—आकाशमें केवल एक गुण 'शब्द' है, पर उसके कार्य वायुमें दो गुण 'शब्द और स्पर्श' हैं।

**वेद भगवान्‌के निःश्वास हैं और गीता भगवान्‌की वाणी है।** निःश्वास तो स्वाभाविक होते हैं, पर गीता भगवान्‌ने योगमें स्थित होकर कही है*। अतः वेदोंकी अपेक्षा भी गीता विशेष है।

**सभी दर्शन गीताके अन्तर्गत हैं, पर गीता किसी दर्शनके अन्तर्गत नहीं है।** दर्शनशास्त्रमें जगत् क्या है, जीव क्या है और ब्रह्म क्या है—यह पढ़ाई होती है। परन्तु गीता पढ़ाई नहीं कराती, प्रत्युत अनुभव कराती है।

गीतापर कई टीकाएँ हो गयीं और कई टीकाएँ होती ही चली जा रही हैं, फिर भी सन्त-महात्माओं, विद्वानोंके मनमें गीताके नये-नये भाव प्रकट होते रहते हैं। अलग-अलग आचार्योंने गीताकी अलग-अलग टीका लिखी है। उनकी टीकाके अनुसार चलनेसे मनुष्यका कल्याण तो हो सकता है, पर वह गीताके अर्थको पूरा नहीं जान सकता। **आजतक गीताकी जितनी टीकाएँ लिखी गयी हैं, वे सब-की-सब इकट्ठी कर दें तो भी गीताका अर्थ पूरा नहीं होता!** जैसे किसी कुएँसे सैकड़ों वर्षोंतक असंख्य आदमी जल पीते रहें तो भी उसका जल वैसा-का-वैसा ही रहता है, ऐसे ही असंख्य टीकाएँ लिखनेपर भी गीता वैसी-की-वैसी ही रहती है, उसके भावोंका अन्त नहीं आता। कुएँके जलकी तो सीमा है, पर गीताके भावोंकी सीमा नहीं है। अतः गीताके विषयमें कोई कुछ भी कहता है तो वह वास्तवमें अपनी बुद्धिका ही परिचय देता है—***'सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥'*** (मानस, बाल० १३। १)। इस गम्भीर ग्रन्थपर कितना ही विचार किया जाय, तो भी इसका कोई पार नहीं पा सकता। इसमें जैसे-जैसे गहरे उतरते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे इसमेंसे गहरी बातें मिलती चली जाती हैं। जब एक अच्छे विद्वान् पुरुषके भावोंका भी जल्दी अन्त नहीं आता, फिर जिनका नाम, रूप आदि यावन्मात्र अनन्त है, ऐसे भगवान्‌के द्वारा कहे हुए वचनोंमें भरे हुए भावोंका अन्त आ ही कैसे सकता है?

भगवान्‌की वाणी बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंकी वाणीसे भी ठोस और श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् ऋषि-मुनियोंके भी आदि हैं—'**अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः**' (गीता १०। २)। अतः कितने ही बड़े ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा क्यों न हों और उनकी वाणी कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर वह भगवान्‌की दिव्यातिदिव्य वाणी 'गीता' की बराबरी नहीं कर सकती।

---

*** न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः॥**
**परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।**
(महाभारत, आश्व० १६। १२-१३)

**भगवान् बोले—'वह सब-का-सब उसी रूपमें फिर दुहरा देना अब मेरे वशकी बात नहीं है। उस समय मैंने योगयुक्त होकर परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था।'**

**योगयुक्त अर्थात् योगमें स्थित होकर गीता कहनेका तात्पर्य है कि सुननेवालेका हित किसमें है? उसके हितके लिये क्या कहना चाहिये? भविष्यमें भी जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, उसका हित किसमें होगा?—इस प्रकार सभी साधकोंके हितमें स्थित होकर गीता कही है।**

इस छोटे-से ग्रन्थमें इतनी विलक्षणता है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहनेवाला किसी भी वर्ण, आश्रम, देश, सम्प्रदाय, मत आदिका कोई भी मनुष्य क्यों न हो, इस ग्रन्थको पढ़ते ही इसमें आकृष्ट हो जाता है। अगर मनुष्य इस ग्रन्थका थोड़ा-सा भी पठन-पाठन करे तो उसको अपने उद्धारके लिये बहुत ही सन्तोषजनक उपाय मिलते हैं। **हरेक दर्शनके अलग-अलग अधिकारी होते हैं, पर गीताकी यह विलक्षणता है कि अपना उद्धार चाहनेवाले सब-के-सब इसके अधिकारी हैं।**

भगवद्गीतामें साधनोंका वर्णन करनेमें, विस्तारपूर्वक समझानेमें, एक-एक साधनको कई बार कहनेमें संकोच नहीं किया गया है, फिर भी ग्रन्थका कलेवर नहीं बढ़ा है। ऐसा संक्षेपमें विस्तारपूर्वक यथार्थ और पूरी बात बतानेवाला दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दीखता। अपने कल्याणकी उत्कट अभिलाषावाला मनुष्य हरेक परिस्थितिमें परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर सकता है; युद्ध-जैसी घोर परिस्थितिमें भी अपना कल्याण कर सकता है—इस प्रकार व्यवहारमात्रमें परमार्थकी कला गीतामें सिखायी गयी है। अतः **इसके जोड़का दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता।**

# गीताका तात्पर्य

थोड़े शब्दोंमें कहें तो गीताका तात्पर्य है—मनुष्यमात्रका कल्याण करना। शास्त्रोंमें कल्याणके कई मार्ग बताये गये हैं। गीताकी टीकाओंको भी देखें तो उनमें अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक मतोंको लेकर टीकाएँ की गयी हैं। इस प्रकार अनेक वाद, सिद्धान्त, मत-मतान्तर होते हुए भी गीताका किसीके साथ विरोध नहीं है। गीताने किसी भी मतका खण्डन नहीं किया है; परन्तु अपनी एक ऐसी विलक्षण बात कही है, जिसके सामने सब नतमस्तक हो जाते हैं। कारण कि गीता किसी एक वाद, मत आदिको लेकर नहीं कही गयी है, प्रत्युत जीवमात्रके कल्याणको लेकर कही गयी है।

गीतामें किसी मतका आग्रह नहीं है, प्रत्युत केवल जीवके कल्याणका ही आग्रह है। मतभेद गीतामें नहीं है, प्रत्युत टीकाकारोंमें है। गीताके अनुसार चलनेसे सगुण और निर्गुणके उपासकोंमें परस्पर खटपट नहीं हो सकती। **गीतामें भगवान् साधकको समग्रकी तरफ ले जाते हैं।** सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, द्विभुज, चतुर्भुज, सहस्रभुज आदि सब रूप समग्र परमात्माके ही अन्तर्गत हैं। समग्ररूपमें कोई भी रूप बाकी नहीं रहता। किसीकी भी उपासना करें, सम्पूर्ण उपासनाएँ समग्ररूपके अन्तर्गत आ जाती हैं। सम्पूर्ण दर्शन समग्ररूपके अन्तर्गत आ जाते हैं। अतः सब कुछ परमात्माके ही अन्तर्गत है, परमात्माके सिवाय किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं है—इसी भावमें सम्पूर्ण गीता है।

गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है—‘**वासुदेवः सर्वम्**’ (७। १९) अर्थात् सब कुछ भगवान् ही हैं। संसारके विषयमें दार्शनिकोंके अनेक मतभेद हैं। कोई अजातवाद मानता है, कोई दृष्टिसृष्टिवाद मनता है, कोई विवर्तवाद मानता है, कोई परिणामवाद मानता है, कोई आरम्भवाद मानता है, पर गीता कोई वाद न मानकर ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ को ही मुख्य मानती है। ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ में सभी वाद, मत समाप्त हो जाते हैं। कारण कि जबतक अहम्‌की सूक्ष्म गन्ध रहती है, तभीतक दार्शनिकोंमें और दर्शनोंमें मतभेद रहता है, जबकि ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ में अहम्‌की सूक्ष्म गन्ध भी नहीं रहती।

एक परमात्मतत्त्वके सिवाय दूसरी सत्ताकी मान्यता रहनेसे प्रवृत्तिका उदय होता है और दूसरी

सत्ताकी मान्यता मिटनेसे निवृत्तिकी दृढ़ता होती है। प्रवृत्तिका उदय होना 'भोग' है और निवृत्तिकी दृढ़ता होना 'योग' है। गीता 'सब कुछ परमात्मा है'—ऐसा मानती है और इसीको महत्त्व देती है। संसारमें कार्यरूपसे, कारणरूपसे, प्रभावरूपसे, सब रूपोंसे मैं-ही-मैं हूँ—यह बतानेके लिये ही भगवान्‌ने गीतामें चार जगह (सातवें, नवें, दसवें और पन्द्रहवें अध्यायमें) अपनी विभूतियोंका वर्णन किया है। ब्रह्म (निर्गुण-निराकार), कृत्स्न अध्यात्म (अनन्त योनियोंके अनन्त जीव), अखिल कर्म (उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिकी सम्पूर्ण क्रियाएँ), अधिभूत (अपने शरीरसहित सम्पूर्ण पांचभौतिक जगत्), अधिदैव (मन-इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवतासहित ब्रह्माजी आदि सभी देवता) तथा अधियज्ञ (अन्तर्यामी विष्णु और उनके सभी रूप)—ये सब-के-सब '**वासुदेवः सर्वम्**' के अन्तर्गत आ जाते हैं (सातवें अध्यायका उनतीसवाँ-तीसवाँ श्लोक)। तात्पर्य है कि सत्, असत् और उससे परे जो कुछ भी है, वह सब परमात्मा ही हैं—'**त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्**' (गीता ११। ३७)। संसार अपने रागके कारण ही दीखता है। रागके कारण ही दूसरी सत्ता दीखती है। राग न हो तो एक परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है। जैसे, भगवान्‌ने कहा है—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५) 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ'। जिस हृदयमें भगवान् रहते हैं, उसी हृदयमें राग-द्वेष, हलचल, अशान्ति होते हैं। हृदयमें ही सुख होता है और हृदयमें ही दुःख आता है। समुद्र-मन्थनमें वहींसे विष निकला, वहींसे अमृत निकला। भगवान् शंकरने विष पी लिया तो अमृत निकल आया। इसी तरह राग-द्वेषको मिटा दें तो परमात्मा निकल आयेंगे। सन्त-महात्माओंके हृदयमें राग-द्वेष नहीं रहते; अतः वहाँ परमात्मा रहते हैं।

सब कुछ परमात्मा ही हैं—यह खुले नेत्रोंका ध्यान है। इसमें न आँख बन्द करने (ध्यान)-की जरूरत है, न कान बन्द करने (नादानुसन्धान)-की जरूरत है, न नाक बन्द करने (प्राणायाम)-की जरूरत है! इसमें न संयोगका असर पड़ता है, न वियोगका; न किसीके आनेका असर पड़ता है, न किसीके जानेका। जब सब कुछ परमात्मा ही है तो फिर दूसरा कहाँसे आये? कैसे आये?

गीता समग्रको मानती है, इसीलिये गीताका आरम्भ और अन्त शरणागतिमें हुआ है। शरणागतिसे ही समग्रकी प्राप्ति होती है। परमात्माके समग्र-रूपमें सब रूप होते हुए भी सगुणकी मुख्यता है। कारण कि सगुणके अन्तर्गत तो निर्गुण भी आ जाता है, पर निर्गुणमें (गुणोंका निषेध होनेसे) सगुण नहीं आता। अतः सगुण ही समग्र हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण समग्र हैं—'**असंशयं समग्रं माम्**' (गीता ७। १)। गीता समग्रकी वाणी है, इसलिये गीतामें सब कुछ है। जो जिस दृष्टिसे गीताको देखता है, गीता उसको वैसी ही दीखने लगती है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' (गीता ४। ११)।

कोई आचार्य पहले कर्मयोग, फिर ज्ञानयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम मानते हैं और कोई आचार्य पहले कर्मयोग, फिर भक्तियोग, फिर ज्ञानयोग—यह क्रम मानते हैं। परन्तु गीता पहले ज्ञानयोग, फिर कर्मयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम मानती है। गीता कर्मयोगको ज्ञानयोगकी अपेक्षा विशेष मानती है—'**तयोस्तु कर्म-सन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते**' (५। २)। कारण कि ज्ञानयोगके बिना तो कर्मयोग हो सकता है—'**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः**' (३। २०), '**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते**' (४। २३), पर कर्मयोगके बिना ज्ञानयोग होना कठिन है—'**सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः**' (५। ६)। श्रीमद्भागवतमें भी पहले ज्ञानयोग, फिर कर्मयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम कहा गया है*। एक विलक्षण

* **योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया। ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥**
(श्रीमद्भा० ११। २०। ६)

बात और है कि गीता कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंको समकक्ष और लौकिक बताती है—**'लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा०'** (३। ३)। क्षर (जगत्) और अक्षर (जीव)—दोनों लौकिक हैं—**'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च'** (गीता १५। १६), पर भगवान् अलौकिक हैं—**'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः'** (१५। १७)। क्षरको लेकर कर्मयोग और अक्षरको लेकर ज्ञानयोग चलता है; अतः कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों लौकिक हैं। परन्तु भक्तियोग भगवान्‌को लेकर चलता है; अतः भक्तियोग अलौकिक है।

गीताने भक्तिको सर्वश्रेष्ठ बताया है (छठे अध्यायका सैंतालीसवाँ श्लोक)। गीताकी भक्ति भेदवाली नहीं है, प्रत्युत अद्वैत भक्ति है। वास्तवमें देखा जाय तो ज्ञानमें द्वैत है और भक्तिमें अद्वैत है। कारण कि ज्ञानमें तो जड़-चेतन, जगत्-जीव, शरीर-शरीरी, असत्-सत्, प्रकृति-पुरुष आदि दो-दो हैं, पर भक्तिमें केवल भगवान् ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९), **'सदसच्चाहम्'** (गीता ९। १९)। भगवान्‌ने ज्ञानके साधनोंमें भी भक्ति बतायी है—**'मयि चानन्ययोगेन०'** (१३। १०) और गुणातीत होनेका उपाय भी भक्ति बताया है—**'मां च योऽव्यभिचारेण०'** (१४। २६)। ज्ञानकी परानिष्ठासे भी पराभक्तिकी प्राप्ति होती है—**'मद्भक्तिं लभते पराम्'** (१८। ५५)। इस पराभक्तिसे जानना, देखना और प्रवेश करना—तीनोंकी प्राप्ति हो जाती है (ग्यारहवें अध्यायका चौवनवाँ श्लोक)। भगवान् अपने भक्तको कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंकी प्राप्ति करा देते हैं (दसवें अध्यायका दसवाँ-ग्यारहवाँ श्लोक)। भगवान्‌ने अपने भक्तको सबसे उत्तम योगी बताया है—**'स मे युक्ततमो मतः'** (६। ४७), **'ते मे युक्ततमा मताः'** (१२। २), **'स योगी परमो मतः'** (६। ३२)। ध्यानयोगमें भी भक्ति आयी है—**'युक्त आसीत मत्परः'** (६। १४)। कर्मयोगमें भी भगवान्‌ने भक्ति बतायी है—**'युक्त आसीत मत्परः'** (२। ६१)। भगवान्‌ने सभी योगोंमें अपनी भक्ति (परायणता) बतायी है, यह भक्तिकी विशेषता है। अर्जुनका प्रश्न भक्तिविषयक नहीं था, फिर भी भगवान्‌ने अपनी तरफसे भक्तिका वर्णन किया (अठारहवें अध्यायके छप्पनवेंसे छाछठवें श्लोकतक)। भक्तिसे समग्र परमात्माकी प्राप्ति होती है (सातवें अध्यायका उनतीसवाँ-तीसवाँ श्लोक)।

गीताका सातवाँ, नवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय, दसवें अध्यायका आरम्भ तथा अठारहवें अध्यायके छप्पनवेंसे छाछठवेंतकके श्लोक हमें बहुत विलक्षण दीखते हैं। इनमें **'अर्जुन उवाच'** नहीं है अर्थात् ये भगवान्‌ने अपनी तरफसे अत्यन्त कृपा करके कहे हैं।

गीतामें कर्मयोगके वर्णनमें ज्ञानयोग-भक्तियोगकी, ज्ञानयोगके वर्णनमें कर्मयोग-भक्तियोगकी और भक्तियोगके वर्णनमें कर्मयोग-ज्ञानयोगकी बात भी आ जाती है। इसका तात्पर्य है कि साधक कोई भी योग करे तो उसको तीनों योगोंकी प्राप्ति हो जाती है अर्थात् उसको मुक्ति और भक्ति—दोनों प्राप्त हो जाते हैं। कारण कि परा और अपरा—दोनों प्रकृतियाँ भगवान्‌की ही हैं। ज्ञानयोग पराको लेकर और कर्मयोग अपराको लेकर चलता है। इसलिये किसी एक योगकी पूर्णता होनेपर तीनों योगोंकी पूर्णता हो जाती है। परन्तु इसमें एक शर्त यह है कि साधक अपने मतका आग्रह न रखे और दूसरेके मतका खण्डन या निन्दा न करे, दूसरेके मतको छोटा न माने। अपने मतका आग्रह रहनेसे और दूसरेके मतको छोटा मानकर उसका खण्डन या निन्दा करनेसे साधकको मुक्ति (तत्त्वज्ञान)-की प्राप्ति तो हो सकती है, पर भक्ति (परमप्रेम)-की अर्थात् समग्रताकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

# गीताकी विलक्षणता

सम्पूर्ण वेदोंका सार उपनिषद् हैं और उपनिषदोंका सार गीता है। उपनिषदोंका सार होनेपर भी गीता बहुत अलौकिक ग्रन्थ है। जैसे आमके वृक्षमें जड़से लेकर पत्तोंतक रस विद्यमान रहता है, पर जो रस उसके फलमें है, वह टहनी, पत्ते आदिमें नहीं है। ऐसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों, वेदों, उपनिषदोंका सार होते हुए भी जो विलक्षणता गीतामें है, वह शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों आदिमें नहीं है। इसलिये गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसका सिद्धान्त शास्त्रोंके परतन्त्र नहीं है। अत: **शास्त्रोंको पढ़कर कोई गीताके भावोंको समझना चाहे तो वह समझ नहीं सकेगा। शास्त्रोंका विशेष ज्ञान होनेपर गीताके भावोंको समझनेमें बाधा लगेगी, गीताके भाव ठीक समझमें नहीं आयेंगे।** कारण कि पहले शास्त्र, सम्प्रदाय आदिके जो संस्कार पड़ जाते हैं, जो धारणा बन जाती है, वह जल्दी बदलती नहीं।

गीता विद्वत्ता (पण्डिताई)-की दृष्टिसे नहीं कही गयी है, प्रत्युत केवल जीवके कल्याणकी दृष्टिसे कही गयी है। भगवान्ने कोरी विद्वत्ताके लिये अर्जुनको फटकारा है—'**प्रज्ञावादांश्च भाषसे**' (गीता २। ११)। अत: गीताको समझनेमें केवल कल्याणकी इच्छा काम आती है, शास्त्रज्ञान, योग्यता, बुद्धिमत्ता आदि काम नहीं आते। **अगर गीताको समझना हो तो किसी ग्रन्थ, सम्प्रदाय आदिका आग्रह छोड़कर, बिलकुल अनजान होकर और केवल भगवत्कृपाका आश्रय लेकर गीताका अध्ययन करना चाहिये।**

**गीता एक प्रासादिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अपनी शरण लेनेवालेपर खुद कृपा करता है और कृपा करके उसके सामने प्रकट होता है।** मैंने ऐसे मनुष्योंको देखा है, जिनको संस्कृतका बोध नहीं है, पर वे गीताका अर्थ करते हैं! भाषाका बोध न होनेपर भी गीताका सिद्धान्त, भाव उनके मनमें आ जाता है। आजसे साठ-पैंसठ वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्तेमें एक मुनीम थे। उनको शुद्ध हिन्दी लिखनी नहीं आती थी। एक दिन उन्होंने कहा कि मैं गीता कण्ठस्थ करना चाहता हूँ; परन्तु इसके लिये किसी पण्डितको रखूँ तो मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उसको तनखा दे सकूँ। मैंने कहा कि तुम भगवान्को नमस्कार करके, उनकी शरण होकर गीता पढ़नी शुरु कर दो। उन्होंने घर जाकर भगवान्का चित्र सामने रख दिया, धूप-बत्ती कर दी, पुष्प चढ़ा दिये और '**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' कहकर गीता पढ़ने लग गये। कुछ समयमें उनको गीता याद हो गयी! मैंने उनसे गीताके अठारह अध्याय ठीक संख्यासहित सुने। अशुद्धियाँ बहुत कम थीं।

विद्वत्ताके अभिमानसे गीता याद नहीं होती—ये उदाहरण भी मेरे सामने आये हैं। एक अच्छे पण्डित थे, जो रामायणके मर्मज्ञ थे। गीता-जयन्तीके अवसरपर मैंने गीताकी कुछ बातें कहीं तो उनका गीतामें आकर्षण हुआ। उन्होंने कहा कि मैं किसीसे कोई श्लोक सुन लेता हूँ ते वह मुझे कण्ठस्थ हो जाता है; अत: मैं गीताका अर्थ जानना चाहता हूँ। मैंने कहा कि आप गीताका एक बारहवाँ अध्याय याद करके मेरे पास आयें तो मैं उसका अर्थ आपको अच्छी तरहसे सुना दूँगा। कुछ दिनोंके बाद वे मेरेसे मिले और कहा कि मैं गीताको याद करनेके लिये बहुत परिश्रम करता हूँ, पर मेरेको गीता याद नहीं होती! इसका कारण मैंने यही समझा कि उनके मनमें अभिमान था कि मैं इतना जानकार हूँ, मेरेको बहुत जल्दी श्लोक याद हो जाते हैं। यह अभिमान पारमार्थिक मार्गमें बड़ा भारी बाधक है। **जो निरभिमान होकर सरलतापूर्वक गीताकी शरणमें जाता है, उसको गीताके भाव समझमें आ जाते हैं।**

गीताका आश्रय लेकर पाठ करनेमात्रसे बड़े विचित्र, अलौकिक और शान्तिदायक भाव स्फुरित होते हैं। इसका मन लगाकर पाठ करनेमात्रसे बड़ी शान्ति मिलती है। इसकी एक विधि यह है

कि पहले गीताके पूरे श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ, फिर एकान्तमें बैठकर गीताके अन्तिम श्लोक '**यत्र योगेश्वरः कृष्णः०**'—यहाँसे लेकर गीताके पहले श्लोक '**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे०**'—यहाँतक बिना पुस्तकके उलटा पाठ किया जाय तो बड़ी शान्ति मिलती है। यदि प्रतिदिन पूरी गीताका एक या अनेक बार पाठ किया जाय तो इससे गीताके विशेष अर्थ स्फुरित होते हैं। मनमें कोई शंका होती है तो पाठ करते-करते उसका समाधान हो जाता है।

वास्तवमें इस ग्रन्थकी महिमाका वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। अनन्तमहिमाशाली ग्रन्थकी महिमाका वर्णन कर ही कौन सकता है? **अनन्त मुखोंसे कही जानेवाली बातको भगवान्ने एक मुखसे गीतामें कह दिया है!** इसलिये गीताके टीकाकार श्रीधरस्वामी लिखते हैं—

**शेषाशेषमुखव्याख्याचातुर्यं त्वेकवक्त्रतः।**
**दधानमद्भुतं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥**

'शेषनागके द्वारा अपने अशेष मुखोंसे की जानेवाली व्याख्याके चातुर्यको जो एक मुखसे ही धारण करते हैं, उन अद्भुत परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

# गीतोक्त श्लोकोंके अनुष्ठानकी विधि

गीताके जिस श्लोकको सिद्ध करना हो, उसका सम्पुट लगाकर पूरी गीताका पाठ करें। ऐसा करनेसे वह श्लोक (मन्त्र) सिद्ध हो जायगा।

सम्पुटकी अपेक्षा भी सम्पुटवल्ली लगाकर गीताका पाठ करना बहुत बढ़िया है। सिद्ध किये जानेवाले श्लोकका गीताके प्रत्येक श्लोकसे पहले और पीछे एक बार पाठ करना 'सम्पुट पाठ' और दो बार पाठ करना 'सम्पुटवल्ली पाठ' कहलाता है।

मन्त्रको किसी कारणसे सिद्ध न कर सकें और अभीष्ट कार्य सिद्ध करनेकी तीव्र उत्कण्ठा हो तो बिना सिद्ध किये मन्त्रका जप करनेसे भी कार्य सिद्ध हो सकता है।

अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये गंगाजीके जलमें खड़े होकर उपर्युक्त प्रकारसे सिद्ध किये हुए मन्त्रका जप करें। ऐसा न कर सकें तो गंगाजीके जलमें पत्थरोंका आसन बनाकर उसपर ऊनका आसन बिछा दें और उसपर बैठकर जप करें। यह भी न कर सकें तो गंगाजीके किनारेपर बालूमें अपना ऊनी आसन बिछाकर और उसपर बैठकर मन्त्रका जप करें। अगर गंगाजीका सान्निध्य उपलब्ध न हो तो अपने घरमें ही किसी एकान्त कमरेमें गोबर और गोमूत्रको पानीमें मिलाकर लीप दें, फिर उसपर अपना ऊनी आसन बिछा दें और उसपर बैठकर मन्त्रका जप करें।

गीतोक्त सिद्ध मन्त्रोंका निम्नलिखित कार्योंमें प्रयोग किया जा सकता है—

(१) कोई बात भगवान्से पूछनी हो, किसी समस्याका समाधान पाना हो, 'मैं ज्ञानमार्गमें चलूँ या भक्तिमार्गमें'—इस उलझनको मिटाना हो तो रात्रिके समय एकान्त कमरेमें आसन बिछाकर बैठ जायँ। कमरेकी बत्ती बुझा दें। केवल एक अगरबत्ती जलाकर रखें। अँधेरेमें चमकती हुई उस अगरबत्तीपर अपनी दृष्टि रखें और भगवान्का ध्यान करें। भगवान् मेरे सामने खड़े हैं और मैं अर्जुनरूपसे भगवान्से पूछ रहा हूँ—ऐसा भाव रखकर इस श्लोकका पाठ करें और साथमें अर्थका भी चिन्तन करते रहें—

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः**
**पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**
**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥**

(गीता २। ७)

'कायरतारूप दोषसे तिरस्कृत स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहित अन्तःकरणवाला मैं आपसे पूछता हूँ कि जो निश्चित कल्याण करनेवाली हो, वह बात मेरे लिये कहिये। मैं आपका शिष्य हूँ। आपके शरण हुए मुझे शिक्षा दीजिये।'

पाठ करते-करते श्लोकके जिस चरणमें अथवा जिन पदोंमें मन लग जाय, उसीका पाठ करना शुरू कर दें; जैसे—'**पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः; पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः**' अथवा '**निश्चितं ब्रूहि तन्मे; निश्चितं ब्रूहि तन्मे**' या '**शाधि मां त्वां प्रपन्नम्; शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' आदि किसी एककी बार-बार आवृत्ति करते रहें। इस तरह पाठ करते हुए नींद आने लगे तो पाठ करते हुए ही सो जायँ। ऐसा करनेसे स्वप्नमें भगवान्‌का संकेत मिलता है। उस संकेतसे समझ लेना चाहिये कि भगवान्‌का अमुक भाव है। अगर संकेत समझमें न आये तो दूसरे दिन पुनः रात्रिमें उपर्युक्त विधिसे पाठ करें और भगवान्‌से प्रार्थना करें कि महाराज! आप लिखकर बतायें। ऐसा करनेसे स्वप्नमें लिखकर सामने आ जायगा। लिखा हुआ भी समझमें न आये तो दूसरे दिन पुनः रात्रिमें उपर्युक्त विधिसे पाठ करें और भगवान्‌से प्रार्थना करें कि प्रभो! आप कहकर बतायें। ऐसा करनेसे स्वप्नमें आवाज आ जायगी और आवाजके साथ ही नींद खुल जायगी।

अगर एक रातमें ऐसा स्वप्न न आये तो जबतक स्वप्न न आये, तबतक उपर्युक्त विधिसे प्रतिदिन रातमें श्लोकका पाठ करते रहें। ग्यारह अथवा इक्कीस दिनतक पाठ किया जा सकता है। इसमें जितनी तेज लगन होगी, उतनी ही जल्दी काम होगा।

(२) मनमें दो बातोंकी उलझन हो और उनका समाधान पाना हो तो उपर्युक्त विधिसे ही इस श्लोकका पाठ करें—

**व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।**
**तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥**

(गीता ३। २)

(३) भूत-प्रेतकी बाधाको दूर करना हो तो इस श्लोकको पहले कही गयी विधिसे सिद्ध कर लें—

**स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या**
**जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।**
**रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति**
**सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥**

(गीता ११। ३६)

जिस व्यक्तिको भूत-प्रेतने पकड़ा है, उसको इस श्लोकका पाठ करते हुए मोरपंखसे झाड़ा दें अथवा अपने हाथमें शुद्ध जलसे भरा हुआ लोटा लें और इस श्लोकको बोलकर जलमें फूँक मारते रहें, फिर वह जल उस व्यक्तिको पिला दें। इन दोनों प्रयोगोंमें इस श्लोकका सात, इक्कीस या

एक सौ आठ बार पाठ कर सकते हैं। इस श्लोकको भोजपत्र या सफेद कागजपर अनारकी कलमके द्वारा अष्टगन्धसे लिखें और ताबीजमें डालकर रोगीके गलेमें लाल धागेसे पहना दें।

(४) शास्त्रार्थमें, वाद-विवादमें विजय पानेके लिये इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।**
**तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥**

(गीता १८। ७८)

(५) सब जगह भगवद्भाव करनेके लिये निम्नलिखित दो श्लोकोंमेंसे किसी एकका पाठ करें—

**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।**
**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥**

(गीता ७। ७)

**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥**

(गीता ७। १९)

(६) भगवान्‌की भक्ति प्राप्त करनेके लिये निम्नलिखित श्लोकोंमेंसे किसी एकका पाठ करें—

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
**मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥**

(गीता ९। ३४)

**भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।**
**ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥**

(गीता ११। ५४)

**मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।**
**निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥**

(गीता ११। ५५)

**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।**
**निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥**

(गीता १२। ८)

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

(गीता १८। ६६)

इस तरह जिस कार्यके लिये जो श्लोक ठीक मालूम दे, उसीका पाठ करते रहें तो कार्य सिद्ध हो जायगा। अगर वह श्लोक अर्जुनका हो तो अपनेमें अर्जुनका भाव लाकर भगवान्‌से प्रार्थना करें, और भगवान्‌का श्लोक हो तो 'भगवान् मेरेसे कह रहे हैं'—ऐसा भाव रखते हुए पाठ करें। गीताके श्लोकोंपर जितना अधिक श्रद्धा-विश्वास होगा, उतनी ही जल्दी काम सिद्ध होगा।

# गीताके प्रभावसे चुड़ैल भागी

गीताके अध्ययन और श्रवणकी तो बात ही क्या है, गीताको रखनेमात्रका भी बड़ा माहात्म्य है! एक सिपाही था। वह रातके समय कहींसे अपने घर आ रहा था। रास्तेमें उसने चन्द्रमाके प्रकाशमें एक वृक्षके नीचे एक सुन्दर स्त्री देखी। उसने उस स्त्रीसे बातचीत की तो उस स्त्रीने कहा—मैं आ जाऊँ क्या? सिपाहीने कहा—हाँ, आ जा। सिपाहीके ऐसा कहनेपर वह स्त्री, जो चुड़ैल थी, उसके पीछे आ गयी। अब वह रोज रातमें उस सिपाहीके पास आती, उसके साथ सोती, उसका सङ्ग करती और सबेरे चली जाती। इस तरह वह उस सिपाहीका शोषण करने लगी। एक बार रातमें वे दोनों लेट गये, पर बत्ती जलती रह गयी तो सिपाहीने उससे कहा कि तू बत्ती बन्द कर दे। उसने लेटे-लेटे ही अपना हाथ लम्बा करके बत्ती बन्द कर दी। अब सिपाहीको पता लगा कि यह कोई सामान्य स्त्री नहीं है, यह तो चुड़ैल है! वह बहुत घबराया। चुड़ैलने उसको धमकी दी कि अगर तू किसीको मेरे बारेमें बतायेगा तो मैं तेरेको मार डालूँगी। इस तरह वह रोज रातमें आती और सबेरे चली जाती। सिपाहीका शरीर दिन-प्रतिदिन सूखता जा रहा था। लोग उससे पूछते कि भैया! तुम इतने क्यों सूखते जा रहे हो? क्या बात है, बताओ तो सही। परन्तु चुड़ैलके डरके मारे वह किसीको कुछ बताता नहीं था।

एक दिन वह सिपाही दूकानसे दवाई लाने गया। दूकानदारने दवाईकी पुड़िया बाँधकर दे दी। सिपाही उस पुड़ियाको जेबमें डालकर घर चला आया। रातके समय जब वह चुड़ैल आयी, तब वह दूरसे ही खड़े-खड़े बोली कि तेरी जेबमें जो पुड़िया है, उसको निकालकर फेंक दे। सिपाहीको विश्वास हो गया कि इस पुड़ियामें जरूर कुछ करामात है, तभी तो आज यह चुड़ैल मेरे पास नहीं आ रही है! सिपाहीने उससे कहा कि मैं पुड़िया नहीं फेकूँगा। चुड़ैलने बहुत कहा, पर सिपाहीने उसकी बात मानी नहीं। जब चुड़ैलका उसपर वश नहीं चला, तब वह चली गयी। सिपाहीने जेबमेंसे पुड़ियाको निकालकर देखा तो वह गीताका फटा हुआ पन्ना था! इस तरह गीताका प्रभाव देखकर वह सिपाही हर समय अपनी जेबमें गीता रखने लगा। वह चुड़ैल फिर कभी उसके पास नहीं आयी।



# गीता-पाठकी महिमा

एक व्यक्तिने पूछा कि मनुष्यको कम-से-कम कितना साधन करना चाहिये? मैंने कहा कि उसको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिये कि जहाँ अभी वह हैं, वहाँसे नीचे नहीं गिरे। जैसे, अभी हमें मनुष्यशरीर प्राप्त है तो कम-से-कम मरनेके बाद भी मनुष्यशरीर ही मिले। इसके लिये उपाय यह है कि प्रतिदिन गीताका पाठ करें। कारण कि प्रतिदिन गीतापाठ करनेवाला मनुष्य मृत्युके बाद पुनः मनुष्यशरीर ही प्राप्त करता है—

**अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः।**
**स याति नरतां यावन्मन्वन्तरं वसुन्धरे॥**

(वाराहपुराण)

इसलिये प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन कम-से-कम गीताके निम्नलिखित पाँच श्लोकोंका पाठ अवश्य ही कर लेना चाहिये—

**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।**
**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥**
**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥**
**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥**
**वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।**
**बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥**

(गीता ४। ६-१०)



# गीता-अमृत-बिन्दु

१. गीताका तात्पर्य '**वासुदेवः सर्वम्**' में है।

२. गीताने भक्तिको सर्वश्रेष्ठ बताया है (६। ४७)। गीताकी भक्ति भेदवाली नहीं है, प्रत्युत अद्वैत भक्ति है।

३. गीतामें 'योग' शब्द विशेषकर 'कर्मयोग' का ही वाचक आता है।

४. गीता पहले ज्ञानयोग फिर कर्मयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम मानती है।

५. गीतोक्त कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही साधन करण-निरपेक्ष अर्थात् स्वयंसे होनेवाले हैं।

६. गीता चित्तवृत्तियोंसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेदपूर्वक स्वतःसिद्ध सम-स्वरूपमें स्वाभाविक स्थितिको 'योग' कहती है। उस समतामें स्थिति (नित्ययोग) होनेपर फिर कभी उससे वियोग नहीं होता, कभी वृत्तिरूपता नहीं होती, कभी व्युत्थान नहीं होता।

७. सम्पूर्ण गीता धर्मके अन्तर्गत है अर्थात् धर्मका पालन करनेसे गीताके सिद्धान्तोंका पालन हो जाता है और गीताके सिद्धान्तोंके अनुसार कर्तव्य-कर्म करनेसे धर्मका अनुष्ठान हो जाता है।

८. जब मनुष्य मस्तीमें, आनन्दमें होता है, तब उसके मुखसे स्वतः गीत निकलता है। भगवान्ने इसको मस्तीमें आकर गाया है, इसलिये इसका नाम '**गीता**' है। यद्यपि संस्कृत व्याकरणके नियमानुसार इसका नाम '**गीतम्**' होना चाहिये था, तथापि उपनिषद्-स्वरूप होनेसे स्त्रीलिंग शब्द '**गीता**' का प्रयोग किया गया है।

९. गीताका उपदेश शरीर और शरीरीके भेदसे आरम्भ होता है। दूसरे दार्शनिक ग्रन्थ तो आत्मा और अनात्माका इदंतासे वर्णन करते हैं, पर गीता इदंतासे आत्मा-अनात्माका वर्णन न करके सबकेअनुभवके अनुसार देह-देही, शरीर-शरीरीका वर्णन करती है। यह गीताकी विलक्षणता है!

१०. गीतापर विचार करनेसे सांख्ययोग एवं कर्मयोग—दोनों परमात्मप्राप्तिके स्वतन्त्र साधन सिद्ध हो जाते हैं। ये किसी वर्ण और आश्रम पर किंचिन्मात्र भी अवलम्बित नहीं हैं।

११. गीता व्यवहारमें परमार्थकी विलक्षण कला बताती है, जिससे मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें रहते हुए तथा शास्त्रविहित सब तरहका व्यवहार करते हुए भी अपना कल्याण कर सके।

१२. एकान्तमें रहकर वर्षोंतक साधना करनेपर ऋषि-मुनियोंको जिस तत्त्वकी प्राप्ति होती थी, उसी तत्त्वकी प्राप्ति गीताके अनुसार व्यवहार करते हुए हो जायगी, सिद्धि-असिद्धिमें सम रहकर निष्कामभावपूर्वक कर्तव्य-कर्म करना ही गीताके अनुसार व्यवहार करना है।

१३. गीताकी दृष्टिमें मन लगना कोई ऊँची चीज नहीं है। गीताकी दृष्टिमें ऊँची चीज है—समता। दूसरे लक्षण आयें या न आयें, जिसमें समता आ गयी, उसको गीता सिद्ध कह देती है। जिसमें दूसरे सब लक्षण आ जायँ और समता न आये, उसको गीता सिद्ध नहीं कहती।

१४. गीताकी यह एक शैली है कि जो साधक जिस साधन (कर्मयोग, भक्तियोग आदि)-के द्वारा सिद्ध होता है, उसी साधनसे उसकी पूर्णताका वर्णन किया जाता है।

१५. गीतामें अर्जुनने जहाँ-कहीं भी क्रियाकी प्रधानताको लेकर प्रश्न किया है, उसका उत्तर भगवान्ने भाव और बोधकी प्रधानताको लेकर ही दिया है। कारण कि क्रियाओंमें भाव और बोध ही

मुख्य है।

१६. गीताका अध्ययन करनेसे ऐसा मालूम देता है कि साधनकी सफलतामें केवल भगवत्परायणता ही कारण है। अतः गीतामें भगवत्परायणताकी बहुत महिमा गायी गयी है।

१७. श्रीमद्भगवद्गीताका उपदेश मनुष्यमात्रके अनुभवपर आधारित है।

१८. श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्यको व्यवहारमें परमार्थ-सिद्धिकी कला सिखाती है। उसका आशय कर्तव्य-कर्म करानेमें है, छुड़ानेमें नहीं। इसलिये भगवान् कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों ही साधनोंमें कर्म करनेकी बात कहते हैं।

१९. बहुत-से मनुष्य केवल स्थूलशरीरकी क्रियाओंको कर्म मानते हैं, पर गीता मनकी क्रियाओंको भी कर्म मानती है। गीताने शारीरिक, वाचिक और मानसिक रूपसे की गयी मात्र क्रियाओंको कर्म माना है—‘**शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः**’ (गीता १८।१५)।

२०. गीतामें कर्मेन्द्रियोंके अन्तर्गत ही ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं। इसलिये गीतामें ‘कर्मेन्द्रिय’ शब्द तो आता है, पर ‘ज्ञानेन्द्रिय’ शब्द कहीं नहीं आता। पाँचवें अध्यायके आठवें-नवें श्लोकोंमें देखना, सुनना, स्पर्श करना आदि ज्ञानेन्द्रियोंकी क्रियाओंको भी कर्मेन्द्रयोंकी क्रियाओंके साथ सम्मिलित किया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि गीता ज्ञानेन्द्रियोंको भी कर्मेन्द्रियाँ ही मानती है। गीता मनकी क्रियाओंको भी कर्म मानती है (गीता १८।१५)।

२१. कर्मोंका त्याग करना चाहिये या नहीं—यह देखना वस्तुतः गीताका सिद्धान्त ही नहीं है। गीताके अनुसार कर्मोंमें आसक्ति ही (दोष होनेके कारण) त्याज्य है।

२२. गीता अपनी शैलीके अनुसार पहले प्रस्तुत विषयका विवेचन करती है। फिर करनेसे लाभ और न करनेसे हानि बताती है। इसके बाद उसका अनुष्ठान करनेकी आज्ञा देती है।

२३. गीताके अनुसार कर्तव्यमात्रका नाम ‘यज्ञ’ है।

२४. गीतामें भगवान्‌की ऐसी शैली रही है कि वे भिन्न-भिन्न साधनोंसे परमात्माकी ओर चलनेवाले साधकोंके भिन्न-भिन्न लक्षणोंके अनुसार ही परमात्माको प्राप्त सिद्ध महापुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन करते हैं।

२५. गीताकी यह शैली है कि भगवान् पीछेके श्लोकमें वर्णित विषयकी मुख्य बातको (जो साधकोंके लिये विशेष उपयोगी होती है) संक्षेपसे आगेके श्लोकमें पुनः कह देते हैं।

२६. स्वाभाविक कर्मोंके प्रवाहको मिटा तो नहीं सकते, पर उसको बदल सकते हैं अर्थात् उसको राग-द्वेषरहित बना सकते हैं—यह गीताका मार्मिक सिद्धान्त है।

२७. स्वधर्मको ही गीतामें सहज कर्म, स्वकर्म और स्वभावज कर्म नामसे कहा गया है।

२८. गीतामें भगवान्‌ने विविध युक्तियोंसे कर्मयोगका सरल और सांगोपांग विवेचन किया है। कर्मयोगका इतना विशद वर्णन पुराणों और उपनिषदोंमें देखनेमें नहीं आता।

२९. कर्म करते हुए निर्लिप्त रहना और निर्लिप्त रहते हुए भी दूसरोंके हितके लिये कर्म करना—ये दोनों ही गीताके सिद्धान्त हैं।

३०. गीताका स्वाध्याय ‘ज्ञानयज्ञ’ है। गीताके भावोंमें गहरे उतरकर विचार करना, उसके भावोंको समझनेकी चेष्टा करना आदि सब स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ है।

३१. गीतामें पहले सांख्ययोग, फिर कर्मयोग और फिर भक्तियोग—इस क्रमसे विवेचन किया गया है।

३२. असत् पदार्थोंके साथ सम्बन्ध रखते हुए मनुष्य कितना ही अभ्यास कर ले, समाधि लगा ले, गिरि-कन्दराओंमें चला जाय, तो भी गीताके सिद्धान्तके अनुसार वह योगी नहीं कहा जा सकता।

३३. गुरु बनना या बनाना गीताका सिद्धान्त नहीं है। मनुष्य आप ही अपना गुरु है। इसलिये उपदेश अपनेको ही देना है। जब सब कुछ परमात्मा ही है (**वासुदेवः सर्वम्**), तो फिर दूसरा गुरु कैसे बने और कौन किसको उपदेश दे?

३४. गीताका योग 'समता' ही है—'**समत्वं योग उच्यते**' (२। ४८)। गीताकी दृष्टिसे अगर समता आ गयी तो दूसरे किसी लक्षणकी जरूरत नहीं है अर्थात् जिसको वास्तविक समताकी प्राप्ति हो गयी है, उसमें सभी सद्गुण-सदाचार स्वतः आ जायँगे और उसकी संसारपर विजय हो जायगी (गीता ५। १९)।

३५. दुःखरूप असत्के साथ माने हुए संयोगका वियोग (सम्बन्ध-विच्छेद) होते ही इस नित्ययोगका अनुभव हो जाता है। यही गीताका मुख्य योग है और इसी योगका अनुभव करनेके लिये गीताने कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग आदि साधनोंका वर्णन किया है।

३६. गीतामें भगवान्ने मुख्य रूपसे भक्तको ही ज्ञानी कहा है (७। १६—१८); क्योंकि वही अन्तिम और असली ज्ञानी है।

३७. गीता मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्तिका अधिकारी मानती है और डंकेकी चोटके साथ, खुले शब्दोंमें कहती है कि वर्तमानका दुराचारी-से-दुराचारी, पूर्वजन्मके पापोंके कारण नीच योनिमें जन्मा हुआ पापयोनि और चारों वर्णवाले स्त्री-पुरुष—ये सभी भगवान्का आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो सकते हैं (९। ३०—३३)।

३८. गीतामें भगवान्ने 'महात्मा' शब्दका प्रयोग केवल भक्तके लिये ही किया है।

३९. निष्पक्ष विचार करनेसे ऐसा दीखता है कि गीतामें ब्रह्मकी मुख्यता नहीं है, प्रत्युत ईश्वरकी मुख्यता है।

४०. भगवान्ने गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि योगोंमें 'महात्मा' शब्दका प्रयोग नहीं किया है। केवल भक्तियोगमें ही भगवान्ने 'महात्मा' शब्दका प्रयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि गीतामें भगवान् भक्तिको ही सर्वोपरि मानते हैं।

४१. गीताका अध्ययन करनेसे ऐसा असर पड़ता है कि भगवान्ने गीतामें अपनी भक्तिकी बहुत विशेषतासे महिमा गायी है।

४२. मात्र जीवोंका कल्याण करनेवाली होनेसे ही गीता विश्वमात्रको प्रिय, विश्ववन्द्य है।......अर्जुन जीवमात्रके प्रतिनिधि हैं और अपना हित ही चाहते हैं। अतः भगवान् उनके अर्थात् जीवमात्रके हितके उद्देश्यसे परम वचन कहते हैं। कल्याणके सिवाय जीवका अन्य कोई हित है ही नहीं। भगवान्के वचन भी कल्याण करनेवाले हैं और उनका उद्देश्य भी कल्याण करनेका है, इसलिये भगवान्की वाणीमें जीवका विशेष कल्याण (परमहित) भरा हुआ है।

४३. दूसरोंकी वाणीमें तो मतभेद रहता है, पर भगवान्की वाणी सर्वसम्मत है। भगवान् योगमें स्थित होकर गीता कह रहे हैं; अतः उनके वचन विशेष कल्याण करनेवाले हैं।

४४. गीतामें विभूति-वर्णन गौण नहीं है, प्रत्युत यह भगवत्प्राप्तिका मुख्य साधन है, जिसकी सिद्धि '**वासुदेवः सर्वम्**' में होती है।.....विभूति-वर्णनका तात्पर्य संसारकी सत्ता, महत्ता और प्रियताको हटाकर मनुष्यको '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव कराना है, जो कि गीताका खास ध्येय है।

४५. भगवान्ने अपनी तरफसे कृपा करके ही गीताको प्रकट किया है।

४६. गीतामें इन्द्रियोंको वशमें करनेकी बात विशेषरूपसे जितनी निर्गुणोपासना तथा कर्मयोगमें आयी है, उतनी सगुणोपासनामें नहीं।

४७. गीतामें समबुद्धिका तात्पर्य 'समदर्शन' है, न कि 'समवर्तन'।

४८. गीताने सगुणको समग्र माना है और ब्रह्म, जीव, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—इन सबको समग्र भगवान्के ही अन्तर्गत माना है (गीता ७। २९-३०)।

४९. गीताको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि निर्गुणोपासना (ब्रह्मकी उपासना) समग्र भगवान्के एक अंगकी उपासना है और सगुणोपासना स्वयं समग्र भगवान्की उपासना है।

५०. गीताकी यह शैली है कि पहले कहे हुए विषयका आगे संक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

५१. गीता फलासक्तिके त्यागपर जितना जोर देती है, उतना और किसी साधनपर नहीं। दूसरे साधनोंका वर्णन करते समय भी कर्मफलत्यागको उनके साथ रखा गया है।

५२. गीतामें 'सुख-दुःख' पद अनुकूलता-प्रतिकूलताकी परिस्थिति (जो सुख-दुःख उत्पन्न करनेमें हेतु है)-के लिये तथा अन्त:करणमें होनेवाले हर्ष-शोकादि विकारोंके लिये भी आया है।

५३. गीतामें जहाँ 'सुख-दु:खमें सम' होनेकी बात आयी है, वहाँ सुख-दु:खकी परिस्थितिमें सम समझना चाहिये और जहाँ 'सुख-दु:खसे रहित' होनेकी बात आयी है, वहाँ (अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितिकी प्राप्तिसे होनेवाली) हर्ष-शोकसे रहित समझना चाहिये।

५४. गीतामें सिद्ध महापुरुषोंको राग-द्वेषादि विकारोंसे सर्वथा मुक्त बताया गया है।

५५. श्रीमद्भगवद्गीताकी एक बहुत बड़ी विलक्षणता यह है कि वह किसी मतका खण्डन किये बिना ही उस विषयमें अपनी मान्यता प्रकट कर देती है।

५६. गीता मुख्यत: रागको ही रजोगुण कहती है।

५७. क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—ये तीनों ही शब्द गीतामें तीनों ही लिंगोंमें आये हैं।

५८. गीतामें परमात्मा और जीवात्मा—दोनोंके स्वरूपका वर्णन प्राय: समान ही मिलता है।

५९. गीतामें 'सर्ववित्' शब्द केवल भक्तके लिये ही आया है।

६०. श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणके लिये है। उन दोनोंके सामने कलियुगकी जनता थी; क्योंकि द्वापरयुग समाप्त हो रहा था। आगे आनेवाले कलियुगी जीवोंकी तरफ दृष्टि रहनेसे अर्जुन पूछते हैं....।

६१. गीतामें 'यज्ञ' शब्द बहुत व्यापक है, जिसके अन्तर्गत यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्म आ जाते हैं (गीता ४। २४-२५)।

६२. एक विलक्षण बात है कि गीतामें जो सत्त्वगुण कहा है, वह संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करके परमात्माकी तरफ ले जानेवाला होनेसे 'सत्' अर्थात् निर्गुण हो जाता है।

६३. भगवद्गीताका आदिसे अन्ततक अध्ययन करनेपर यह असर पड़ता है कि इसका उद्देश्य केवल

जीवका कल्याण करनेका है।

६४. गीताके अनुसार दूसरेके हितके लिये कर्म करना 'यज्ञ' है, हरदम प्रसन्न रहना 'तप' है और उसकी चीज उसीको दे देना 'दान' है। स्वार्थबुद्धिपूर्वक अपने लिये यज्ञ-तप-दान करना आसुरी अथवा राक्षसी स्वभाव है।

६५. अगर मरणासन्न व्यक्तिकी गीतामें रुचि हो तो उसको गीताका आठवाँ अध्याय सुनाना चाहिये; क्योंकि इस अध्यायमें जीवकी सद्‌गतिका विशेषतासे वर्णन आया है। इसको सुननेसे उसको भगवान्‌की स्मृति हो जाती है।

६६. गीतामें जहाँ संगके त्यागकी बात कही है, वहाँ उसके साथ फलके त्यागकी बात भी समझ लेनी चाहिये और जहाँ फलके त्यागकी बात कही है, वहाँ उसके साथ संगके त्यागकी बात भी समझ लेनी चाहिये।

६७. गीतामें फलेच्छाके त्यागको ही फलका त्याग कहा गया है।

६८. गीता रजोगुणको क्रियात्मक मानते हुए भी मुख्यरूपसे रागात्मक ही मानती है—'**रजो रागात्मकं विद्धि**' (१४।७)। वास्तवमें देखा जाय तो 'राग' ही बाँधनेवाला है, क्रिया नहीं।

६९. गीताका 'सात्त्विक' गुणातीत करनेवाला, संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेवाला है। इसलिये इसमें बन्धन और मोक्षतकका विचार होता है—'**बन्धं मोक्षं च या वेत्ति**' (१८। ३०)।

७०. गीतामें मुख्यरूपसे तीन योग कहे हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।

७१. तीनों योगोंमें रति होनेपर भी गीतामें 'भगवद्‌रति' की विशेषरूपसे महिमा गायी गयी है।

७२. गीताभरमें देखा जाय तो समताकी बड़ी भारी महिमा है। मनुष्यमें एक समता आ गयी तो वह ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त आदि सब कुछ बन गया। परन्तु यदि उसमें समता नहीं आयी तो अच्छे-अच्छे लक्षण आनेपर भी भगवान् उसको पूर्णता नहीं मानते।

७३. '**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**' (१८। ६६) 'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा'—यह गीताभरमें अत्यन्त रहस्यमय खास उपदेश है।

७४. जैसे '**सर्वगुह्यतमम्**' पद गीतामें एक ही बार आया है, ऐसे ही '**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**' ऐसा वाक्य भी एक ही बार आया है।

७५. भगवान् भक्तिके प्रसंगमें ही 'परम वचन' कहते हैं।

७६. गीताके अनुसार सम्पूर्ण धर्मों अर्थात् कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

७७. गीतामें अर्जुनने अपने कल्याणके साधनके विषयमें कई तरहके प्रश्न किये और भगवान्‌ने उनके उत्तर भी दिये। वे सब साधन होते हुए भी गीताके पूर्वापरको देखनेसे यह बात स्पष्ट दीखती है कि सम्पूर्ण साधनोंका सार और शिरोमणि साधन भगवान्‌के अनन्यशरण होना ही है।

७८. शरणागति गीताका सार है, जिसको भगवान्‌ने विशेष कृपा करके कहा है। इस शरणागतिमें ही गीताके उपदेशकी पूर्णता होती है। इसके बिना गीता अधूरी रहती।

७९. गीताकी यह एक विचित्र कला है कि मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्मोंसे भी परमात्माका निष्कामभावपूर्वक पूजन करता हुआ परमात्माको प्राप्त हो जाता है (गीता १८। ४६), और जो खाना-पीना, शौच-स्नान आदि शारीरिक कार्योंको भी भगवान्‌के अर्पण कर देता है, वह भी

शुभ-अशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है (गीता ९। २७-२८)। तो फिर जो केवल भगवान्‌की भक्तिका लक्ष्य करके गीताका प्रचार करता है, वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाय, इसमें कहना ही क्या है!

८०. भगवद्गीतामें अपना उद्धार करनेकी ऐसी-ऐसी विलक्षण, सुगम और सरल युक्तियाँ बतायी गयी हैं, जिनको मनुष्यमात्र अपने आचरणोंमें ला सकता है।

८१. अपने धर्म, सम्प्रदाय, सिद्धान्त आदिका प्रचार करनेवाला व्यक्ति भगवान्‌का प्रिय तो हो सकता है, पर प्रियतर नहीं होगा। प्रियतर तो किसी तरहसे गीताका प्रचार करनेवाला ही होगा।

८२. गीता वेश, आश्रम, अवस्था, क्रिया आदिका परिवर्तन करनेके लिये नहीं कहती, प्रत्युत परिमार्जन करनेके लिये कहती है अर्थात् केवल अपने भाव और उद्देश्यको शुद्ध बनानेके लिये कहती है।

८३. गीताकी शिक्षासे मनुष्यमात्रका प्रत्येक परिस्थितिमें सुगमतासे कल्याण हो सकता है।

८४. इसमें वेदों तथा उपनिषदोंका सार और भगवान्‌के हृदयका असली भाव है, जिसको धारण करनेसे मनुष्य भयंकर-से-भयंकर परिस्थितिमें भी अपने मनुष्यजन्मके ध्येयको सुगमतापूर्वक सिद्ध कर सकता है।

८५. शास्त्रोंमें प्राय: ऐसी बात आती है कि संसारकी निवृत्ति करनेसे ही मनुष्य पारमार्थिक मार्गपर चल सकता है और उसका कल्याण हो सकता है। मनुष्योंमें भी प्राय: ऐसी ही धारणा बैठी हुई है कि घर, कुटुम्ब आदिको छोड़कर साधु-संन्यासी होनेसे ही कल्याण होता है। परन्तु गीता कहती है कि कोई भी परिस्थिति, अवस्था, घटना, देश, काल आदि क्यों न हो, उसीके सदुपयोगसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

८६. समस्त योगोंके महान् ईश्वरके द्वारा कहा जानेसे यह गीताशास्त्र 'योग' अर्थात् योगशास्त्र है। यह गीताशास्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ और गोपनीय है। इसके समान श्रेष्ठ और गोपनीय दूसरा कोई संवाद देखने-सुननेमें नहीं आता।

*—'साधक-संजीवनी' से संकलित*

# गीता-सार

## पहले अध्यायका सार

सांसारिक मोहके कारण ही मनुष्य 'मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ'—इस दुविधामें फँसकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। अत: मोह या सुखासक्तिके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

## दूसरे अध्यायका सार

शरीर नाशवान् है और उसे जाननेवाला शरीरी अविनाशी है—इस विवेकको महत्व देना और अपने कर्तव्यका पालन करना—इन दोनोंमेंसे किसी भी एक उपायको काममें लानेसे चिन्ता-शोक मिट जाते हैं।

## तीसरे अध्यायका सार

निष्कामभावपूर्वक केवल दूसरोंके हितके लिये अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है।

## चौथे अध्यायका सार

कर्मबन्धनसे छूटनेके दो उपाय हैं—कर्मोंके तत्त्वको जानकर नि:स्वार्थभावसे कर्म करना और तत्त्वज्ञानका अनुभव करना।

## पाँचवें अध्यायका सार

मनुष्यको अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंके आनेपर सुखी-दु:खी नहीं होना चाहिये; क्योंकि इनसे सुखी-दु:खी होनेवाला मनुष्य संसारसे ऊँचा उठकर परम आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता।

## छठे अध्यायका सार

किसी भी साधनसे अन्त:करणमें समता आनी चाहिये। समता आये बिना मनुष्य सर्वथा निर्विकल्प नहीं हो सकता।

## सातवें अध्यायका सार

सब कुछ भगवान् ही हैं—ऐसा स्वीकार कर लेना सर्वश्रेष्ठ साधन है।

## आठवें अध्यायका सार

अन्तकालीन चिन्तनके अनुसार ही जीवकी गति होती है। अत: मनुष्यको हरदम भगवान्का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे अन्तकालमें भगवान्की स्मृति बनी रहे।

## नवें अध्यायका सार

सभी मनुष्य भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेश आदिके क्यों न हों।

## दसवें अध्यायका सार

संसारमें जहाँ भी विलक्षणता, विशेषता, सुन्दरता, महत्ता, विद्वत्ता, बलवत्ता आदि दीखे, उसको भगवान्का ही मानकर भगवान्का ही चिन्तन करना चाहिये।

## ग्यारहवें अध्यायका सार

इस जगत्‌को भगवान्‌का ही स्वरूप मानकर प्रत्येक मनुष्य भगवान्‌के विराट्‌रूपके दर्शन कर सकता है।

### बारहवें अध्यायका सार

जो भक्त शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसहित अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, वह भगवान्‌को प्रिय होता है।

### तेरहवें अध्यायका सार

संसारमें एक परमात्मतत्त्व ही जाननेयोग्य है। उसको जाननेपर अमरताकी प्राप्ति हो जाती है।

### चौदहवें अध्यायका सार

संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे अतीत होना जरूरी है। अनन्यभक्तिसे मनुष्य इन तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है।

### पन्द्रहवें अध्यायका सार

इस संसारका मूल आधार और अत्यन्त श्रेष्ठ परमपुरुष एक परमात्मा ही हैं—ऐसा मानकर अनन्यभावसे उनका भजन करना चाहिये।

### सोलहवें अध्यायका सार

दुर्गुण-दुराचारोंसे ही मनुष्य चौरासी लाख योनियों एवं नरकोंमें जाता है और दु:ख पाता है। अत: जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिये दुर्गुण-दुराचारोंका त्याग करना आवश्यक है।

### सत्रहवें अध्यायका सार

मनुष्य श्रद्धापूर्वक जो भी शुभ कार्य करे, उसको भगवान्‌का स्मरण करके, उनके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

### अठारहवें अध्यायका सार

सब ग्रन्थोंका सार वेद हैं, वेदोंका सार उपनिषद् हैं, उपनिषदोंका सार गीता है और गीताका सार भगवान्‌की शरणागति है। जो अनन्यभावसे भगवान्‌की शरण हो जाता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं।

# भगवद्‌गीता—विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें

१. **जो संसारकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है, उसके सम्बन्धमें भला, मैं क्या लिखूँ! यों तो गीताके अतिरिक्त और भी कई महान् धर्मग्रन्थ हैं, पर भगवद्गीताकी तो बात ही निराली है! वह तो ईश्वरोंके भी ईश्वर—परम महेश्वरका दिव्य संगीत है!** —जॉर्ज सिडनी अरण्डेल।

२. **भगवद्‌गीता भारतवर्षके उदात्त तथा संसारके गम्भीर धर्मशास्त्रोंमें मुकुटमणि है।** —चार्ल्स जॉन्सटन।

३. **विश्वके भावी सार्वभौम धर्मका सूत्रग्रन्थ बननेके लिये गीता ही सर्वथा उपयुक्त है। भारतके गौरवपूर्ण प्राचीनकालके इस अमूल्य रत्नसे मानव-जातिके और भी गौरवपूर्ण समुज्ज्वल विश्वके निर्माणमें अनुपम सहायता मिलेगी।** —एफ० टी० ब्रुक्स।

४. **भगवद्गीताके अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा भारतीय ग्रन्थ नहीं है, जिसकी भारतवर्षमें एवं अन्यान्य देशोंमें दूर-दूरतक इतनी प्रसिद्धि हुई हो और जिसको ईश्वरीय संगीत मानकर हिन्दुस्तानके सभी लोग इतना प्रेम करते हों।** —प्रो० ऑटो श्रैस।

५. **गीताका उपदेश इतना दिव्य, ऐसा अलौकिक है कि बड़े-से-बड़े विद्वान्-बुद्धिमान् इसे पढ़ते हैं; परन्तु इसके भँवरमें पड़कर उनकी विद्या-बुद्धि चकरा जाती है! वे थाह नहीं लगा पाते, समझ नहीं पाते! इतना अलौकिक, ऐसा विलक्षण है यह प्रवचन कि जीवन-पथपर चलते-चलते अनेक निराश और श्रान्त पथिकोंको इसने शान्ति, आशा और आश्वासन दिया है और उन्हें सदाके लिये चूर-चूर होकर मिट जानेसे बचा लिया है—ठीक उसी प्रकार, जैसे इसने अर्जुनको बचाया।** —के० ब्राउनिंग।

६. **भारतवर्षके इस सर्वप्रिय काव्यमय दार्शनिक ग्रन्थके बिना अँग्रेजी साहित्य निश्चय ही अपूर्ण रहेगा।** —सर एडविन ऑरनल्ड।

७. **जगत्‌के सम्पूर्ण साहित्यमें, चाहे सार्वजनिक लाभकी दृष्टिसे देखा जाय और चाहे व्यावहारिक प्रभावकी दृष्टिसे देखा जाय, भगवद्गीताके जोड़का अन्य कोई भी काव्य नहीं है।** —जे० एन० फरक्यूहर।

८. **गीता केवल हिन्दुओंकी ही नहीं, अपितु संसारकी सभी जातियोंकी धर्म-पुस्तक है। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह इस अमर ग्रन्थको ध्यानपूर्वक एवं पक्षपातरहित होकर पढ़े, चाहे वह किसी धर्मको और किसी धर्मगुरुको मानता हो।** —कैखुशरू जे० दस्तूर।

९. **गीताको लाखों मनुष्योंने सुना, पढ़ा तथा पढ़ाया है और आत्माको प्रभुकी ओर अग्रसर करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त आशाजनक सिद्ध हुई है।** —डॉ० लीओनेल डी० बैरेट।

१०. **प्राचीन युगकी सभी स्मरणीय वस्तुओंमें भगवद्गीतासे श्रेष्ठ कोई भी वस्तु नहीं है।...... भगवद्गीतामें इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखनेवाले देवताको हुए अगणित वर्ष हो जानेपर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभीतक नहीं लिखा गया।......गीताके**

**साथ तुलना करनेपर जगत्‌का आधुनिक समस्त ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है।.......मैं नित्य प्रातःकाल अपने हृदय और बुद्धिको गीतारूपी पवित्र जलमें स्नान करवाता हूँ।** —थारो।

११. **किसी भी जातिको उन्नतिके शिखरपर चढ़ानेके लिये गीताका उपदेश अद्वितीय है।** —वारेन हेस्टिंग्स।

१२. **भारतवर्षके धार्मिक साहित्यका कोई अन्य ग्रन्थ भगवद्गीताके समान स्थान प्राप्त करनेके योग्य नहीं है।** —रिचार्ड गार्बे।

## गीता-माहात्म्य

**गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।**
**गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्॥**
**गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।**
**गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः॥**
**गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे परमं गृहम्।**
**गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम्॥**

(वैष्णवीयतन्त्रसार)

**'(श्रीभगवान् बोले—) गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम तत्त्व है, गीता मेरा अत्यन्त तेजस्वी और अविनाशी ज्ञान है, गीता मेरा उत्तम स्थान है, गीता मेरा परमपद है, गीता मेरा परम गोपनीय रहस्य है और गीता साधकोंके लिये अत्युत्तम गुरु है। मैं गीताके ही आश्रयमें रहता हूँ, गीता मेरा उत्तम घर है। गीता-ज्ञानका ही आश्रय लेकर मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ।'**

# आधार-ग्रन्थ-सूची


१. साधक-संजीवनी
२. गीता-दर्पण
३. साधन-सुधा-सिन्धु
४. जित देखूँ तित तू
५. सब जग ईश्वररूप है
६. सत्संगकी विलक्षणता
७. संजीवनी-सुधा
८. गीता-ज्ञान-प्रवेशिका
९. श्रीमद्भगवद्गीताङ्क (कल्याण, वर्ष ४)
१०. गीता-तत्त्वाङ्क (कल्याण, वर्ष १४)


===::0::===



# गीताके प्रचारकी महिमा

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६८-६९)

'(श्रीभगवान् बोले-) मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद (गीता-ग्रन्थ) को मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है और इस भूमण्डलपर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।'

गीता प्रकाशन, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

## 'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्भुत वर्णन।
१०. **कृपामयी भगवद्गीता** (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१५. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
१७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

**गीता प्रकाशन,**
**कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,**
**गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)**
**फोन—09389593845; 07668312429**
e-mail: radhagovind10@gmail.com